R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-20, अङ्क-3 मार्च 2020

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

ज्ञानकल्याणक शुद्धता की पूर्णता

आत्मसाधना के अपूर्व उग्र पुरुषार्थपूर्वक क्षपकश्रेणी आरोहण करके मुनि महावीर पूर्ण शुद्धता को प्राप्त कर भगवान बन जाते हैं। केवलज्ञानरूपी सूर्य का उदय हो जाने से उनके ज्ञान में तीन लोक और तीन काल के समस्त पदार्थ स्पष्ट झलकने लगते हैं। सौधर्म इन्द्र समवसरण की रचना करते हैं। तीर्थंकर की धर्मसभा को ही समवसरण कहते हैं। समवसरण में सुन्दर बारह सभाओं की रचना होती है, जिनमें मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविका, देव-देवियों एवं पशुओं के भी बैठने की व्यवस्था होती है। यह ॐकारमयी निरक्षरी ध्वनि, दिव्यध्वनि कहलाती है। इसे सुनकर गणधरदेव द्वादशांग की रचना करते हैं। दिव्यध्वनि का ऐसा अतिशय होता है कि श्रोताओं के मन में जो भी प्रश्न उठते हैं, उनका समाधान सहजरूप से स्वत: ही हो जाता है।

ॐकारमयी वाणी तेरी! जिनधर्म की शान है!!

2

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन सत्र 20-21 प्रवेश प्रारंभ

(फार्म जमा करने की अन्तिम तिथि - 05 मार्च 2020;
01 अप्रेल से 05 अप्रेल 2020 प्रवेश साक्षात्कार शिविर)

सद्धर्म प्रेमी बन्धुवर सादर जयजिनेन्द्र,

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन मङ्गलायतन में प्रवेश प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। वर्तमान युग में अपने कोमलमति बालक और युवाओं में धर्म, संस्कार एवं नैतिक शिक्षा के साथ उच्च शिक्षा देना चाहते हो तो अवश्य ही 05 मार्च 2020 तक अपने प्रवेश फार्म मङ्गलायतन ऑफिस में जमा करायें।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन लगातार उन्नति के शिखर को छू रहा है। यहाँ से निकले मङ्गलार्थी उच्च स्तर की प्रशासनिक एवं राष्ट्रीय सेवाएँ देते हुए समाज को तत्त्वज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं। स्व-पर कल्याण करते हुए वीतरागी जिनमार्ग को घर-घर पहुँचा रहे हैं।

यदि आप भी चाहते हैं कि आज की पीढ़ी पाप के दलदल में न फँसे, सन्तोषपूर्वक आत्मकल्याण करते हुए अपना जीवन सफल करे तो अवश्य ही भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में अपने बालकों का प्रवेश करायें।

प्रवेश के योग्य अभ्यार्थी की पात्रता

(1) सातवीं कक्षा में कम से कम 60 प्रतिशत अंक से पास हो। (2) फार्म भरते समय छठी कक्षा में भी कम से कम 60 प्रतिशत अंक हों। (3) सातवीं कक्षा में अंग्रेजी माध्यम से ही पढ़ता हो। (4) शरीर में कोई असाध्य रोग न हो। (5) जैन धर्मानुसार अभक्ष्य भक्षण नहीं करता हो। (6) जैन धर्म पढ़ने की रुचि रखता हो।

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन की विशेषताएँ

(1) पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा उद्घाटित वीतरागी तत्त्वज्ञान का गहरा अध्ययन। (2) धार्मिक, नैतिक, सांस्कारिक, सामाजिक, लौकिक, पारलौकिक, आध्यात्मिक, सैद्धांतिक आदि विद्याध्ययन करने का अवसर। (3) भारत के उच्चतम स्कूल डी.पी.एस. में पढ़ने का अवसर। (4) विश्व के प्रसिद्ध विद्वानों से अध्ययन करने का अवसर। (5) चहुँमुखी प्रतिभा एवं विकास के साधन (6) डी.पी.एस. के माध्यम से विश्वस्तरीय खेल, प्रतिस्पर्धा एवं व्यक्तित्व विकास का अवसर। (7) खेल एवं संगीत शिक्षा की विशेष व्यवस्था। (8) मङ्गलायतन द्वारा देश-विदेश में तत्त्वज्ञान आराधना / प्रभावना करने का अवसर। (9) आगामी उच्चस्तरीय शिक्षा की पूर्व में ही विशेष कोचिंग की व्यवस्था। (10) आत्मसम्मान एवं जिनधर्म की शिक्षापूर्वक उच्च आजीविका का अवसर।

शीघ्र ही आप अपने बालकों का फार्म भरकर, तीर्थधाम मङ्गलायतन के पते पर कोरियर द्वारा 700 रुपये के ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

कोरियर भेजने का पता — भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, तीर्थधाम मङ्गलायतन
द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरा रोड, अलीगढ़ - 202001 (उ.प्र.)
मोबा : 9997996346, 9756633800

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-20, अङ्क-3 (वी.नि.सं. 2546; वि.सं. 2076) मार्च 2020

हमें निज धर्म पर चलना....

हमें निज धर्म पर चलना, सिखाती रोज जिनवाणी।
सदा शुभ आचरण करना, सिखी रोज जिनवाणी।।टेक।।

चौरासी लाख योनि में, भटक नर जन्म पाया है।
निधि निज भूल नहिं पावें, सिखाती रोज जिनवाणी।।1।।

ग्रहण करना नहीं करना, कि क्या निज क्या पराया है।
भेद-विज्ञान इसका भी, सिखाती रोज जिनवाणी।।2।।

धनिक निर्धन स्वजन परिजन, कि ज्ञानी या अज्ञानी है।
भेद तज मार्ग सुखकारी, सिखाती रोज जिनवाणी।।3।।

जिन्हें संसार सागर से, उतर भव पार जाना है।
उन्हें सुख के किनारे पर, लगाती रोज जिनवाणी।।4।।

सत्य सुख सार पा इसमें, पतित तम पार जाना है।
शरण 'दोषी' यही तेरी, है तारनहार जिनवाणी।।5।।

हमें संसार सागर में, रुलाते कर्म हैं आठों।
करें किस भाँति इनका क्षय, सिखाती रोज जिनवाणी।।6।।

करें जो भव्य मन निर्मल, पठन कर शीघ्र तिर जावे।
मार्ग शिवपुर में जाने का, दिखाती रोज जिनवाणी।।7।।

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
स्व. पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
स्व. श्री सुमतिचन्द्र एवं माता श्रीमती इन्द्राणी देवी की स्मृति में श्रीयुत अजय, विजय, रतन, पवन जैन
मुम्बई-दिल्ली-हाथरस

क्या - कहाँ

सुखी होने के लिये..... 5
सन्त मोक्षमार्ग में बुलाते हैं..... 11
आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल.. 15
श्री समयसार नाटक 17
ज्ञान की अनुभूति, वह मोक्ष..... 25
आचार्यदेव परिचय शृंखला..... 28
प्रेरक-प्रसंग..... 29
समाचार-दर्शन..... 30

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

सुखी होने के लिये प्रथम क्या करें ?

[श्री मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ का स्वाध्याय कीजिये]

संयोगी दृष्टि और संयोगी भाव के आलम्बन से दु:ख हो रहा है। संयोग किसी को सुख-दु:ख दे नहीं सकते। इस संसार में सभी प्राणी अनादि काल से चारों गतियों में जन्म-मरण करते-करते महान दु:ख उठा रहे हैं। तिर्यंच (पशु-पक्षी आदि) और मनुष्य गति के भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, मारण-ताड़न आदि शारीरिक एवं मानसिक दु:ख प्रत्यक्ष ही दिखते हैं। जिन्हें देखकर कौन भयभीत नहीं होता? किन्तु आश्चर्य यह है कि फिर भी अधिकांशत: जीव वास्तविकता से अनभिज्ञ होकर, झूठे, नाशवान पराधीन इन्द्रिय-जनित दु:खों को सुख की भ्रमणा में अनन्त दु:ख परिपाटी को भोग रहे हैं। और जो थोड़े से जीव संसार दु:खों से ऊब भी जाते हैं, उन्हें सच्चे सुख का यथार्थ मार्ग ज्ञात नहीं है, अत: वे दु:ख निवारण का उल्टा उपाय करके दलदल में फँसे हाथी या जाल में फँसे मृग की भाँति-जितना प्रयत्न करते हैं, उतना और उलझते जाते हैं।

क्या आपने भी कभी एकान्त में बैठकर इस रहस्य पर विचार किया है कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? और इस क्षणभंगुर लीला को समाप्त करके कहाँ चला जाऊँगा? अपार जैन समूह बचपन से बुढ़ापे तक, सुबह से शाम तक और यहाँ तक कि दिन-रात, खाने-कमाने और शरीर की व्यवस्था में व्यस्त हैं। और कभी इन तथ्यों पर दृष्टि डालने का सुयोग ही नहीं निकालता।

किन्तु वास्तव में सच्चे सुख की प्राप्ति और दु:खों से बचने का उपाय स्वाध्याय से ही विदित होता है। स्वाध्याय शब्द स्वयं ही चरितार्थ करता है—

(स्व+अध्ययन) अर्थात् आत्म-निरीक्षण। स्वाध्याय गृहस्थ के षट् आवश्यकों में मुख्य है क्योंकि शेष पाँच आवश्यकों का वास्तविक स्वरूप तथा उन्हें आचरण करने का सम्यक् प्रकार स्वाध्याय से ही जाना जाता है।

अत: स्वाध्याय द्वारा कल्याण के मर्म को हृदयंगम करके उसे जीवन में उतारना चाहिए।

अब विचार यह करना है कि किन शास्त्रों का स्वाध्याय करना विशेष हितकर है।

वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा की धारा प्रवाहरूप विशाल उपदेश गंगा में से भरे हुए कलशों के समान इस समय भी जैन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित महान ग्रन्थ षट्-खण्डागम, अष्टपाहुड़, नियमसार, जयधवल, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, पंचाध्यायी, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, गोम्मटसार आदि संस्कृत प्राकृत के ग्रन्थ उपलब्ध ग्रन्थ हैं। जिनके अध्ययन के लिए न्याय, व्याकरण आदि का विशेष ज्ञान एवं समय की आवश्यकता है किन्तु हम जैसे अल्प आयु और अल्प ज्ञानवाले जीवों को उन महान ग्रन्थों के निचोड़रूप अमृत-प्याले के समान ऐसे संक्षिप्त ग्रन्थों के स्वाध्याय की आवश्यकता है जो सरल सुगम भाषा में द्वादशांग वाणी के सार को समझानेवाले हों। ऐसे ग्रन्थों में आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी विरचित 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थ विशेष उपयोगी और अनुपम ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ता का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है:—

ग्रन्थ-परिचय

श्री 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थ विक्रम की 16वीं शताब्दी के प्रथम पाद की रचना है। इसकी भाषा ढूँढ़ारी है जो अत्यन्त सरल, रोचक व सुबोध है। इन ग्रन्थ में मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्व तथा देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप का यथार्थ निरूपण किया गया है। इसमें सूक्ष्म तत्त्वचर्चाओं को भी बड़ा सरल बनाने का प्रयास किया है। जिस विषय को उठाया है, उस पर खूब ऊहापोह किया है और उस विषय के प्रत्येक पहलू पर विचार किया है, साथ ही शंका-समाधान के द्वारा विषय का स्पष्टीकरण भी किया है, जिससे वस्तु का यथार्थ स्वरूप सहज ही समझ में आ जाता है। यह ग्रन्थ, प्राचीन

दिगम्बर जैनाचार्यों के महान ग्रन्थों का रहस्य खोलने की अनुपम कुंजी है, धर्म-पिपासुओं के लिये अमृत है, जिसे पीते जाने पर भी तृप्ति नहीं होती। इस ग्रन्थ की रहस्यपूर्ण गम्भीरता और उत्तम धर्मबद्ध विषयरचना को देखकर बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि भी आश्चर्यचकित हो जाती है। इस ग्रन्थ को निष्पक्ष दृष्टि से अवलोकन करने पर अनुभव होता है कि यह कोई साधारण ग्रन्थ नहीं है किन्तु उच्च कोटि का ग्रन्थराज है।

इस ग्रन्थ में नौ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में ग्रन्थ की भूमिका, मंगलाचरण का प्रयोजन, पंच परमेष्ठी का स्वरूप, अंगश्रुत की परम्परा व ग्रन्थ की प्रामाणिकता आदि का वर्णन है। दूसरे अध्याय में सांसारिक अवस्था का निरूपण है। तीसरे अध्याय में दु:ख के मूल कारण मिथ्यात्व, विषयाभिलाषाजनित दु:ख, मोही जीव के दु:ख-निवृत्ति के उपायों का झूठापना और दु:ख-निवृत्ति का सच्चा उपाया बताया है। चौथे अध्याय में दु:ख का मूल कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र का वर्णन, प्रयोजनभूत, अप्रयोजनभूत पदार्थों की समझ, और इनमें गलत समझने से होनेवाली राग-द्वेष की प्रवृत्ति का स्वरूप बतलाया है। पाँचवें अध्याय में आगम और युक्ति के आधार से विविध मतों की समीक्षा करते हुये गृहीत मिथ्यात्व का बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया है। साथ ही अन्यमत के प्राचीन ग्रन्थों के उदाहरण द्वारा जैनधर्म की प्राचीनता और महत्ता को पुष्ट किया है। छट्ठे अध्याय में गृहीत मिथ्यात्व के निमित्तकारण कुगुरु-कुदेव और कुधर्म का स्वरूप और उनकी सेवा से होनेवाली हानि को बतलाया है।

सातवें अध्याय में जैन मिथ्यादृष्टि का विस्तृत वर्णन है। एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास, एकान्त व्यवहारालम्बी जैनाभास, उभयनयावलम्बी जैनाभास का युक्तिपूर्ण कथन किया गया है। जिसके पढ़ते ही जैनदृष्टि का सत्यस्वरूप सामने आ जाता है और उनकी विपरीत

मान्यता, जो व्यवहार व निश्चयनयों का ठीक अर्थ न समझने के कारण हुई थी, वह दूर हो जाती है। आठवें अध्याय में चारों अनुयोगों (प्रथमानुयोग, करणानुयोग व द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग) के शास्त्रों की कथनशैली, उनका स्वरूप प्रयोजन और शास्त्रों में दोषकल्पनाओं का समाधान दिया गया है। नववें अध्याय में मोक्षमार्ग के स्वरूप का निर्देश, सम्यक् पुरुषार्थ से ही मोक्षप्राप्ति का नियम, सम्यग्दर्शन के लक्षणों में विपरीत अभिप्राय रहित तत्त्वार्थश्रद्धान को मुख्य सिद्धकर उस श्रद्धान में चारों लक्षणों की व्याप्ति बताई है। किन्तु खेद है कि मोक्ष के कारणरूप रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन का स्वरूप भी पूरा नहीं लिखा जा सका, हमारे दुर्भाग्य से 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थ अपूर्ण रह गया। यदि ग्रन्थ पूरा हो जाता तो वह अद्वितीय होता, फिर भी जितना लिखा जा सका है, वह अपने आपमें परिपूर्ण और मौलिक कृति के रूप में जगत का कल्याण कर रहा है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से कितने जीवों का भला हुआ है तथा कितने लोगों की दिगम्बर जैनधर्म पर दृढ़ श्रद्धा हुई है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इसी कारण इस ग्रन्थ ने जैन समाज में ऐसा स्थान बना लिया है कि इसका नाम सुनते ही इस ग्रन्थ के प्रति श्रद्धा उमड़ आती है। इस ग्रन्थ की उपयोगिता व लोकप्रियता का प्रमाण है कि इसका अनुवाद आधुनिक-हिन्दी, मराठी व गुजराती भाषाओं में भी हो चुका है तथा इसकी अब तक लाखों प्रतियाँ मुद्रित हो चुकी हैं। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ भी उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार आदि प्रान्तों के प्रायः सभी मन्दिरों में हैं, जिनकी संख्या हजारों में है।

ग्रन्थकार का परिचय

श्री 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थ के रचयिता पण्डित टोडरमलजी का जन्म लगभग दो सौ वर्ष पूर्व वि० सं० 1787 के लगभग जयपुर में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री जोगीदास और माता का नाम रम्भाबाई था। आप

खण्डेलवाल दिगम्बर जैन गोदीका गोत्रज थे। पण्डितजी की स्मरण शक्ति विलक्षण थी। आपने 10-11 वर्ष की आयु में ही न्याय, व्याकरण एवं गणित जैसे कठिन विषयों का गम्भीर ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपके गुरु का नाम वंशीधर था। आपकी मृत्यु 37-38 वर्ष की अल्पायु में सामाजिक विद्वेष के कारण हुई थी। पण्डितजी अबाधित न्यायवेत्ता एवं सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वों को ही सत्य माननेवाले दृढ़ श्रद्धानी थे। पण्डितजी की बहुज्ञता अद्वितीय थी। आप स्वयं 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में लिखते हैं—

'टीका सहित समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, गोम्मटसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्धियुपाय, आत्मानुशासन आदि शास्त्र, अर श्रावक मुनि के निरूपक अनेक शास्त्र, अरु सुष्ठ कथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं, तिन विषैं हमारे बुद्धि अनुसार अभ्यास वर्ते है।'

इससे ज्ञात होता है कि पण्डितजी ने सिद्धान्त व आध्यात्मिक रूप चारों अनुयोगों के ग्रन्थों का अध्ययन करके आगमोक्त उपयोगी सर्व रहस्य का अनुगम किया। जिसके फलस्वरूप गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, आत्मानुशासन, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय आदि महान ग्रन्थों की टीका की और जिनवाणी का सम्पूर्ण सार लेकर अति सुगम शैली द्वारा इस ग्रन्थ 'मोक्षमार्गप्रकाशक' की रचना कर जीवों को अमूल्य आत्मनिधि का ज्ञान कराया। यदि यह ग्रन्थ आज न होता तो हमें जिनागम के गूढ़ रहस्य तथा प्रयोजनभूत तत्त्व स्पष्टता से समझने में न आते। इसी कारण पण्डित टोडरमलजी को आचार्यकल्प के नाम से स्मरण किया जाता है।

अन्त में तत्त्व-जिज्ञासुओं व आत्मकल्याण के इच्छुकों से निवेदन है कि वे 'मोक्षमार्गप्रकाशक' का नियमितरूप से स्वाध्याय करके सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वों का यथार्थ निर्णय कर व अपनी आत्मा में सम्यग्ज्ञान का प्रकाश करके अनादिकालीन मिथ्यात्व का नाश करें। स्वयं पण्डितजी ने

भी इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय के अन्त में स्वाध्याय की महत्ता बताई है—

'बहुरि प्रवचनसार विषै भी मोक्षमार्ग का अधिकार किया, तहां प्रथम आगमज्ञान ही उपादेय कहा है, सो इस जीव का तो मुख्य कर्तव्य आगमज्ञान है, याको होतैं तत्त्वनिका श्रद्धान ही है, तत्त्वनिका श्रद्धान भए संयम भाव ही है और तिस आगम तै आतमज्ञान की भी प्राप्ति हो है। तब सहज ही मोक्ष की प्राप्ति हो है। बहुरि धर्म के अनेक अंग हैं, तिन विषैं एक ध्यान विना यातैं ऊंचा और धर्म का अंग नाहीं है, तातैं जिस तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है। बहुरि इस ग्रंथ (मोक्षमार्गप्रकाशक) का तो वांचना सुनना विचारना घना सुगम है, कोऊ व्याकरणादि का भी साधन न चाहिये, तातैं अवश्य याका अभ्यास विषैं प्रवर्तो, तुम्हारा कल्याण होगा।'

पण्डित प्रवर श्री दौलतरामजी भी छहढाला में तत्त्व-अभ्यास करने की प्रेरणा करते हैं-

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन,
इह परमामृत जन्म जरा मृति रोग निवारण;
तातैं जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजै,
संशय विभ्रम मोह त्याग आपौ लख लीजै;
यह मानुष पर्याय सुकुल सुनिवौ जिनवानी,
इह विधि गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी॥

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 27, अंक चार

तत्त्व प्रभावना

तीर्थधाम मङ्गलायतन : दिनांक 17 फरवरी से 23 फरवरी 2020 तक ख्यातिप्राप्त विद्वान **पण्डित अभयकुमार जैन, देवलाली** द्वारा दोपहर में **क्रमबद्धपर्याय** विषय पर; सायंकाल में **क्रिया परिणाम और अभिप्राय** विषय पर कक्षा ली गयी और प्रात:काल **रहस्यपूर्ण चिट्ठी** पर मार्मिकस्वाध्याय का लाभ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी एवं उपस्थित सदस्यों को प्राप्त हुआ। सभी कक्षाएँ एवं स्वाध्याय YouTube पर Teerthdham Mangalayatan, Aligarh Channel पर उपलब्ध हैं।

सन्त मोक्षमार्ग में बुलाते हैं

स्वानुभवपूर्वक अन्तर में निजपद की साधना करनेवाले धर्मात्मा दूसरे जीवों को भी शुद्ध चैतन्यपद बतलाकर मोक्षमार्ग में बुलाते हैं कि अरे जीवो! आनन्दमय निजपद की साधना करने के लिये तुम भी इस मार्ग पर आओ!

अपने चैतन्य को जो नहीं देखते, अनुभव नहीं करते एवं रागादि निजपद को अपना मान रहे हैं, वे जीव अन्धे हैं। जो जीव अपने स्वरूप को नहीं देखते-ऐसे जीवों को जागृत करके आचार्यदेव उन्हें शुभपद दिखाते हैं।

हे प्राणियो! रागादि अशुभभावों को ही निजरूप मानकर तुम उनका वेदन कर रहे हो, उन्हीं के समान अपने को मान रहे हो—तथापि वह भूल है, जीव का स्वरूप वैसा नहीं है, जीव तो शुद्ध चैतन्यमय है, उसे भूलकर रागादि पर्यायों के समान स्वयं को अनुभव करता है। राग में तो आकुलता है। उस मार्ग पर न जाओ, तुम्हारा वह मार्ग नहीं, तुम तो चैतन्यमय हो, इसलिए इस मार्ग की ओर आओ—इस मार्ग पर आओ। शुद्ध चैतन्यपद की ओर उन्मुख होओ... उसका अनुभव करो... यही तुम्हारा मार्ग है; ऐसे चैतन्यपद में ही तुम्हारा आनन्द है; उसे छोड़कर अन्यत्र न जाओ तथा दूसरे का अनुभव न करो।

जिसमें से चैतन्य के आनन्द की परिणति प्रगट हो, उस चैतन्यपद का अनुभव नहीं करता और रागादि को निजपद मानकर उसी के अनुभव में रुक जाता है, वह तो परभाव की मायाजाल में फँसा हुआ है, अपने निजपद को भूला हुआ है और चार गति के भव-भ्रमण में सोया हुआ है। जिस जिस भव में जिस पर्याय को धारण करता है, उसी पर्याय के अनुभव में मग्न है। मैं देव हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं रागी हूँ; ऐसा अनुभव करता है। परन्तु उससे भिन्न अपने शुद्ध ज्ञायकपद का अनुभव नहीं करता, वह अन्धा है। वह विनाशी

भावरूप ही अपना अनुभव करता है परन्तु अविनाशी निजपद को नहीं देखता। वह निजपद का मार्ग भूलकर विपरीत मार्ग पर पहुँच गया है। सन्त उसे बुलाते हैं कि अरे जीव, रुक जा! विभाव के मार्ग से वापिस आ... वह सुख का मार्ग नहीं, वह तो मायाजाल में फँसने का मार्ग है। इसलिए उस मार्ग की ओर न जा... इस ओर आ... तेरा आनन्दमय सुखधाम यहाँ पर है, अत: इस ओर आ। देव, मनुष्य, रागी तू नहीं है, तू तो शुद्ध चैतन्यमय है तथा तेरा अनुभव भी चैतन्यमय है। चैतन्य से पृथक् कोई तेरा पद नहीं... वह तो अपद है.. अपद है।

अरे, ऐसा चैतन्यपद देखकर उसकी साधना के लिये आठ-आठ वर्ष के राजकुमार तो राजपाट छोड़कर वन में चले गये, अनुभवगम्य चैतन्यपद में लीन होने के लिये वीतरागमार्ग में लग गये। जिस चैतन्यपद के सन्मुख इन्द्रपद भी तुच्छ भासित होता है, उसके महिमा की क्या बात! अरे शुद्ध चैतन्यस्वरूप जैसा है, उसे वैसा तो देख। अमृत से भरे चैतन्य सरोवर को छोड़कर विष से भरे हुए समुद्र में मत जा, भाई, दु:खी होने के मार्ग पर मत जा...! उससे पीछे मुड़कर इस चैतन्य के मार्ग पर आ! बाह्य में तेरा मार्ग नहीं, परन्तु अन्तर में है। सन्त प्रेम से तुझे ऐसे मोक्ष के मार्ग में बुलाते हैं।

अहो ऐसे मार्ग पर कौन नहीं आयेगा? विभाव को छोड़कर स्वभाव में कौन नहीं आयेगा? बाह्य का राज्य-वैभव छोड़कर अन्तर के चैतन्य-वैभव को साधने के लिये राजा और राजकुमार अन्तरोन्मुख हुए। बाह्यभाव अनन्त काल तक किये, अब उन्हें छोड़कर, मेरा परिणमन अन्दर के निजपद की ओर उन्मुख होता है तथा अब मैं परभाव के मार्ग में जानेवाला नहीं हूँ परन्तु अन्तर के चैतन्यपद में ही मैं रहूँगा। धर्मी जीव ऐसे स्वानुभवपूर्वक निजपद को साधते हैं... और दूसरे जीवों से भी कहते हैं कि हे जीवो! तुम भी इसी मार्ग पर आओ। अपने अन्तर में देखा हुआ मोक्ष का मार्ग-आनन्द का मार्ग बतलाकर सन्त बुलाते हैं कि हे जीवो! तुम भी हमारे साथ इस मार्ग पर आओ... इस मार्ग पर आओ। अविनाशी सिद्धपद का यही मार्ग है।

मोक्षार्थी को स्वाद लेनेयोग्य, अनुभव करनेयोग्य शुद्ध चैतन्यपद एक ही है। इसके अतिरिक्त अन्य सब अपद हैं, शुद्धजीव का वह स्वरूप नहीं है, मोक्ष अर्थात् परम सुख चाहते हो तो सदा शुद्धपद का ही अनुभव करो। क्या करना और कहाँ स्थिर होना ? तो कहते हैं कि अपने शुद्ध चैतन्य पद में दृष्टि करना, उसी में मग्न रहना। शरीर या घर, वह तेरा पद नहीं है, तेरा निवास नहीं है। संयोग तेरा निवासस्थान नहीं है; राग तेरा निवासस्थान नहीं है; तेरा निवास तो असंख्यप्रदेशी चैतन्यरस से भरपूर है, वही तेरा निजपद है। उसका अनुभव लेना ही मोक्षसुख अर्थात् चिरसुख का कारण है। चिर सुख अर्थात् दीर्घ सुख, शाश्वत सुख, मोक्षसुख।

आत्मा स्वयं सत्य अविनाशी वस्तु है, उसके अनुभव से हुआ सुख शाश्वत तथा अविनाशी है। आत्मा का आनन्द स्व में है, पर में नहीं। जिसमें आनन्द न हो, उसे निजपद कैसे कहा जाये ? निजपद तो उसे कहते हैं कि जिसमें आनन्द हो। जिसका स्वाद लेने से, जिसमें निवास करने से और जिसमें स्थिर होने से आत्मसुख का अनुभव हो, वही निजपद है। जिसके वेदन में आकुलता हो, वह निजपद नहीं, वह पर-पद है तथा आत्मा के लिये अपद है। उसे अपद जानकर उससे विमुख होकर शुद्ध आनन्दमय चैतन्यपद की ओर उन्मुख होओ ! सन्त बुलाते हैं कि इस ओर आओ—इस ओर आओ !

जिसमें कोई विकल्प नहीं, ऐसा यह निर्विकल्प चैतन्यपद ही आस्वादन करनेयोग्य है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में चैतन्य का स्वाद है; राग का स्वाद रत्नत्रय से बाहर है। निजपद में राग का स्वाद नहीं, राग तो दुःख और विपदामय है, परन्तु चैतन्यपद में विपदा नहीं है। जिसमें आपदा है, वह अपद है, जिसमें आपदा का अभाव और सुख का सद्भाव है, वही स्वपद है, आनन्दस्वरूप आत्मा की सम्पदा से जो विपरीत है, वह विपदा है। राग चैतन्य की सम्पदा नहीं, तथापि वह विपदा है और आत्मा का अपद है। जिस प्रकार राजा का स्थान कूड़े-कचरे का ढ़ेर नहीं

होता; राजा तो सोने के सिंहासन पर ही शोभा देता है; उसी प्रकार इन जीवराजा का स्थान राग-द्वेष-क्रोधादि तथा मलिन भावों में नहीं है; वह तो अपने शुद्ध चैतन्य-सिंहासन पर ही शोभा देता है। राग में कहीं चैतन्यराजा का स्थान नहीं है, वह तो अपद है, अस्थिर है, मलिन है, विरुद्ध है; चैतन्यपद शाश्वत है, शुद्ध है, पवित्र है, अपने स्वभावरूप है। ऐसे शुद्धपद को हे जीवो! तुम जानो... उसे स्वानुभव-प्रत्यक्ष करो। ऐसी जिनपद की साधना ही मोक्ष का उपाय है।

अहा, निजानन्द में निमग्न चैतन्यमय, शान्तरस के प्रवाहरूप निजपद, यह आत्मा स्वयं है। बाह्य में देखने का रस छोड़कर स्वयं अपने चैतन्यपद को देखने से परम आनन्द प्राप्त होता है। ऐसे आनन्द के मार्ग पर सन्त बुलाते हैं। [श्री समयसार कलश 138-139 के प्रवचन से]

मङ्गलायतन के सम्बन्ध में जानकारी

फार्म नं० 4, नियम नं० 8

पत्रिका का नाम	: *मङ्गलायतन* (हिन्दी)
प्रकाशन अवधि	: मासिक
प्रकाशक का नाम	: पवन जैन (भारतीय)
पता	: 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश)
सम्पादक का नाम	: डॉ. सचिन्द्रकुमार जैन (भारतीय)
पता	: उपरोक्त
मुद्रक का नाम	: पवन जैन (भारतीय)
पता	: उपरोक्त
मुद्रण का स्थान	: *मङ्गलायतन* मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़- 202001
स्वामित्व	: पवन जैन, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उ.प्र.)

मैं पवन जैन एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपुर्यक्त विवरण सत्य हैं।

पवन जैन

दिनाङ्क : 01.04.2020 प्रकाशक

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल अभिनन्दन

(दोहा)

श्री चौबीस जिनेश दृग-ज्ञान-चरण में धार।
गणधर कुल के पद-कमल में वन्दन शत बार ॥1 ॥
प्राकृत संस्कृत में रचे आचार्यों ने ग्रन्थ।
जन-जन को दिखला रहे शिवपुर पथ निर्ग्रन्थ ॥2 ॥
अति गम्भीर रहस्य को भाषा देश मँझार।
मर्म ग्रन्थ का खोलते बुधजन का उपकार ॥3 ॥
मौलिक प्रतिभा के धनी बहुश्रुत जिन उर धार।
मोक्षमार्ग परकाश के टोडरमल करतार ॥4 ॥
स्याद्वादमय सन्तुलन दूर करे अज्ञान।
सम्यग्ज्ञान सुचन्द्रिका करे मोह की हान ॥5 ॥

(वीर छन्द)

मोक्षमार्ग के मर्म प्रकाशक टोडरमल का अभिनन्दन।
जिनवाणी के रसिक, उन्हें आचार्य-कल्प कह करें नमन ॥
रूढ़िवाद के प्रबल विरोधी मिथ्यामत पर किया प्रहार।
हे विद्वान शिरोमणि तुमको नमें मुमुक्षु शत-शत बार ॥6 ॥

वीतराग-विज्ञान भाव से ही परमेष्ठी पूज्य हैं।
वीतरागता पोषक वाणी पढ़ने-सुनने योग्य है ॥
है अनादि से जीव कर्म से बँधा हुआ पर्याय में।
स्वयं स्वयं को भूल रहा तो भटक रहा संसार में ॥7 ॥

द्रव्य स्वतन्त्र अनादि-निधन हैं स्वयं परिणमित होते हैं।
भ्रम से जीव दुखी जग में भ्रम मिटने से दुख मिटते हैं ॥
दुख के कारण मिटने से ही सिद्ध प्रभू हैं परम सुखी।
तत्त्व-विचार करें यदि हम तो हम भी होंगे परम सुखी ॥8 ॥

इन्द्रिय-ज्ञान जानता तन को अत: एकता तन से की।
सात प्रयोजनभूत तत्त्व की मिथ्या श्रद्धा करे दुखी॥
मिथ्या श्रद्धा के संग में सब ज्ञान चरित भी मिथ्या हों।
जानबूझ कर मूढ़ रहे यह अरे! मोह-महिमा देखो॥9॥
मिथ्यामत बहु प्रचलित जग में अगृहीत-मिथ्या पोषक।
जिनमत में भी कल्पित रचना तीव्र-कषायी जीवों कृत॥
कुगुरु कुदेवादिक सेवन ही मिथ्या श्रद्धा पुष्ट करे।
देव धर्म गुरु हैं सर्वोत्तम इनसे ही शिव-मार्ग चले॥10॥
जिन-आगम अभ्यास करे पर मिथ्या श्रद्धा नहीं टले।
कोइ एक नय पक्ष रहे या सबको एक समान लखे॥
मोक्षमार्ग दो नहीं किन्तु दो तरह कथन करता आगम।
तत्त्व विचार करे तो सम्यग्दर्शन पथ पर प्रथम कदम॥11॥
वीतरागता के पोषक ही कामधेनु चारों अनुयोग।
उनकी शैली नहिं जाने तो कैसे हो सम्यक् उपयोग॥
शास्त्रों का अभ्यास करे यदि स्याद्वादयुत दृष्टि से।
मोक्षमार्ग का प्रथम चरण है आगमज्ञान सुदृष्टि से॥12॥
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित पर्याय-शुद्ध ही मोक्ष स्वरूप।
अत: भव्य पुरुषार्थ करें तो सहज प्रगट हो सिद्ध स्वरूप॥
तत्त्वज्ञान-श्रद्धान सहित रागादि घटाने से शिव-पन्थ।
तत्त्वार्थों का हो यथार्थ श्रद्धान कहें समकित, निर्ग्रन्थ॥13॥
गूढ़ रहस्य भरे पत्रों से समाधान सम्यक् होता।
शास्त्र समान प्रमाणिक पत्रों को पढ़कर आनन्द होता॥
भावशुभाशुभ होते तब भी श्रद्धा तो निर्लिप्त रहे।
सविकल्पी से निर्विकल्प होने की अद्भुत विधि कहें॥14॥

पण्डितगण के भी गुरु विद्वद्जन शिरमौर
अभिनन्दन है आपका आप समान न और॥15॥

- पण्डित अभयकुमार जैन, देवलाली

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

संवर का वर्णन

जो उपयोग स्वरूप धरि, वरतै जोग विरत्त।
रोकै आवत करमकौ, सो है संवर तत्त ॥31॥

अर्थः- जो ज्ञान-दर्शन उपयोग को प्राप्त करके योगों की क्रिया से विरक्त होता है और आस्रव को रोक देता है वह संवर पदार्थ हैं ।।31।।

काव्य - 31 पर प्रवचन

संवर अर्थात् राग-द्वेष के, पुण्य-पाप के परिणाम उत्पन्न नहीं होना और आत्मा के आश्रय से निर्मल दशा का प्रकट होना, उसे संवर कहते हैं। संक्षिप्त में राग का अटकना और निर्मलता का प्रकटना संवर है। पुण्य-पाप के परिणाम, संवर नहीं थे; वे तो आस्रव बंध के ही कारण थे।

संवर अर्थात् धर्म की निर्मल-पवित्रदशा। उस पवित्रदशा का स्वरूप क्या? **'उपयोग स्वरूप धरि'**- पुण्य-पाप के विकल्प बिना, शुद्धस्वरूप आत्मा का उपयोग धरे, व्यापार करे, उसे संवर कहते हैं। व्रत लेकर बैठ जाने से संवर नहीं होता; परन्तु उससे धर्म (संवर) मानने से तो उलटे मिथ्यात्व होता है।

आत्मा जानने -देखनेवाला चैतन्यबिम्ब प्रभु है, उसका पुण्य-पाप के भावरहित, जानने-देखने का शुद्ध निर्मल व्यापार, वह संवर है। सच्चिदानन्द प्रभु का वीतरागी-निर्मल उपयोग, चैतन्य के आश्रय से प्रकट हुआ जानने-देखने का जो परिणाम उपयोग को धरे, वह संवरतत्त्व है।

लोगों को ऐसा धर्म का स्वरूप कठिन मालूम होता है, मानो मेरु पर्वत उठाना हो! ऐसे ही अनन्त जीवन चले जाते हैं। धर्म किसी भी दिन नहीं किया था, पर मानता था कि मैंने धर्म किया है।

उपयोग से धर्म और क्रिया से कर्म ऐसा आता है न! शुभ-अशुभभाव वह राग की क्रिया है, उससे कर्म आते हैं और उपयोग से धर्म अर्थात् शुद्ध

चैतन्यवस्तु में अन्तर एकाग्र होकर जानने-देखने के शुद्ध परिणाम प्रकट करना, उसको उपयोग कहते हैं, वही धर्म है और उसको ही संवर कहते हैं। पहले जो शुभ-अशुभभाव कहा, वह आस्रवतत्त्व है और जो शुद्ध उपयोग को धारण करे, वह संवरतत्त्व है।

'वत्थुसहावो धम्मो' जानना देखना और आनन्द वह जीव का अविनाशी त्रिकाल स्वभाव है, उसमें एकाकार होकर जानने-देखने के और आनन्द के शुद्ध परिणामों का करना, होना और धरना उसको संवर अथवा धर्म कहने में आता है।

यह संवरतत्त्व जीव की निर्विकारी दशा है, द्रव्य-गुण नहीं; परन्तु निर्मल पर्याय है और पुण्य-पाप तथा आस्रव-बंध विकारी पर्याय है।

'वरते जोग विरत्त'- जो शुभ-अशुभभाव से विरक्त होता है और शुद्धभाव से सहित है, वह संवर है, उसका ही नाम समकित है और वही धर्म है।

संवर और आस्रव दोनों विरोधी दशायें हैं। आस्रव में जीव शुभ-अशुभ क्रिया के रस में रत है और संवर में उनसे विरत है। आस्रव अशुद्धोपयोग है और संवर शुद्धोपयोग है। आस्रव कर्मों को खींचता है और संवर आते हुए कर्मों को रोकता है। आस्रव अधर्म है और संवर धर्म है।

भगवान ने शान्ति की शुद्धोपयोगरूप क्रिया को संवर कहा है। इस मूलतत्त्व को समझे बिना व्रतादि व्यर्थ हैं और प्रतिक्रमणादि करने और यात्रा कर लेने से धर्म नहीं हो जाता। ये सब तो विकारी प्रवृतियाँ हैं। 'करना' उसमें तो जीव के स्वभाव का नाश होता है।

लोगों को व्यापारादि अशुभक्रियाओं से बाहर आने का ही समय नहीं मिलता। उसमें से थोड़ा समय निकालकर शुभक्रिया करके मान लेते हैं कि हमें धर्म हो गया; परन्तु इस व्यवहार धर्म का अर्थ ही यह है कि धर्म नहीं, उसे धर्म कहना वह व्यवहार है। जिसका जो स्वरूप नहीं उसे उस रूप से कहने का नाम व्यवहार है।

भगवान आत्मा परम अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है। शुभाशुभराग से विरक्त होकर उस परम आनन्दकन्द में लीन होने से जो शुद्धोपयोग परिणाम प्रकट होता है उसे भगवान संवरतत्त्व कहते हैं। जिसको संवर हुआ, उसके पाप अटक –रुक गये।

कोई तो ऐसा कहते हैं कि भगवान की भक्ति करो तो तुमको संवर और निर्जरा होगी; परन्तु भाई! भगवान तो परद्रव्य है, उनकी भक्ति का भाव, वह तो राग है, उससे धर्म किसप्रकार होगा?वहाँ भक्ति की धुन जगाकर कर्त्तापना हो, वह तो मिथ्यात्व है। परन्तु इसने अनन्तकाल में एक सैकेण्ड मात्र भी यह मार्ग प्रकट नहीं किया, अतः कठिन लगता है और राग के रस में तो अनादि से डूबा ही है, इसलिए वह सरल लगता है।

अनेकान्त किसको कहते हैं और एकान्त किसको कहते हैं इसकी खबर भी जगत को नहीं है और शब्द पकड़कर विपरीत अर्थ करते हैं। व्यवहार से भी धर्म होता है और निश्चय से भी धर्म होता है ऐसा मानते हैं। निश्चय से ही धर्म होता है– यह तो एकान्त है ऐसा कहते हैं; परन्तु भाई! तुझे एकान्त–अनेकान्त का ज्ञान ही नहीं है। देखो, यहाँ क्रिया स्वरत और वरते जोग विरत कहकर अनेकान्त किया है। विकार की उत्पत्ति नहीं होना और निर्दोष स्वभाव प्रकट होना, उसे संवर–धर्म कहते हैं।

भाई! भाषा तो बहुत सादी है, पर भाव बहुत गम्भीर है।

'अनन्त काल थी आथड़यो, बिना मान भगवान।
सेव्या नहिं गुरु–संत ने, मूक्यू नहिं अभिमान॥

हम शास्त्र जानते हैं– ऐसा अभिमान नहीं छोड़ा और आत्मा का भान नहीं किया। इस कारण जीव ने परिभ्रमण किया है। सच्चिदानन्द, निर्मलानन्द प्रभु आत्मा को भगवान सर्वज्ञदेव ने जैसा देखा और जैसा कहा है, वैसा अनन्तज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुणों का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसके सन्मुख होकर जिसने शुद्धोपयोग को धारण किया है, उसके भगवान संवर अर्थात् धर्म का प्रारम्भ होना कहते हैं। धर्म का प्रारम्भ शुद्धोपयोग से ही होता है।

भगवान आत्मा महाप्रभु है। अनन्त-अनन्त आनन्द का रसकन्द है, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प की गंध भी नहीं है। ऐसा ही सत् है। भाई! अब सत् को असत् कैसे कहा जाये? और असत् को सत् कैसा माना जाये? आत्मा के सत् में पुण्य-पाप के विकल्प नहीं हैं, वे तो (जीव) कर्म के उदय में जुड़कर नये उत्पन्न करता है। आत्मतत्त्व पुण्य-पापरूप विकल्प के जाल से भिन्न है।

बनारसीदासजी महान कवि थे न! बहुत सरस भाषा का प्रयोग किया है। शुभाशुभभाव को रागरस की क्रिया कहकर, वह कर्म को खींचने में कारण है, कर्म के रोकने में कारण नहीं ऐसा कहा है। शुभ-अशुभयोग से विरत हुआ है और अपने उपयोग स्वरूप को धारण किया है, उसके धर्म हैं -यह अनेकान्त है।

श्रीमद्जी ने भी कहा है कि "अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति सिवाय अन्य हेतु से उपकारी नहीं है।" सम्यक् स्वभावसन्मुख ढलने से शुद्धोपयोग प्रकट होता है और शुभ है, उसका ज्ञान होता है; उसको अनेकान्त कहते हैं। कल्पना से अर्थ करे, वह नहीं चलता। वस्तु की स्थिति जैसी है; संतों, आचार्यों के जो अभिप्राय है, उस अभिप्रायानुसार अर्थ करने पर ही वस्तु की स्थिति ज्ञान में आती है। भले ही पर्याय और राग का ज्ञान हो, परन्तु वह ज्ञान स्वभावसन्मुख ढलने पर ही यथार्थ होता है। सम्यक् एकान्त (स्वभाव) तरफ ढले बिना अनेकान्त का ज्ञान भी यथार्थ नहीं हो सकता।

जो अपने शुद्धोपयोग स्वरूप को धरता है और शुभ-अशुभ राग से विरत होता है वह कर्मों को आने से रोकता है-उसका नाम संवर है। एक से लेकर चौबीस घन्टे बैठे रहने से संवर नहीं हो जाता। मैं पर से निवृत हुआ हूँ-यह मान्यता ही मिथ्यात्व है; क्योंकि वह जड़ की क्रिया में ही 'मैं पना' मानकर बैठा है। जोगविरत का अर्थ ही यह है कि शुभ-अशुभ विकल्पों से निवृत्त होना और स्वभाव सन्मुख ठहरना (स्थिरता करना), उसका नाम ही धर्म है।

आत्मा जड़ की क्रिया से तो निवृत्त ही है। आत्मा जड़ की क्रिया करता ही नहीं। तो जिससे तो निवृत्त ही है उससे नया निवृत होना रहा ही कहाँ ? यह तो अज्ञान से शुभ-अशुभ क्रिया में जुड़ता था उससे निवृत्त हुआ और स्वभाव में रत्त अर्थात् शुद्धोपयोग प्रकट हुआ, वह कर्म को रोकने का कारण है।

समकिती का कथन हो, श्रावक का हो, मुनि का हो या केवली का हो; किसी के भी कथन में फेर नहीं पड़ता। उसकी अपनी स्थिरता में फेर है, यह बात अलग है। वह चारित्र की स्थिरता का भेद है, परन्तु वस्तु की दृष्टि में किसी को फेर (अन्तर) नहीं है; अत: जैसा केवली प्ररूपित करते हैं, वैसा ही समकिती प्ररूपित करता है। बनारसीदासजी ने पूर्व में आठवें काव्य में लिया है कि "जाकैं घट प्रकट विवेक गणधर कौ सो।" तीर्थकर के वजीर धर्मराजा के दीवान जो गणधरदेव, उन्हें जैसी श्रद्धा है, ऐसी ही श्रद्धा समकिती को होती है; फिर समकिती भले ही नरक में हो, तिर्यंच में हो, मनुष्य में हो या देव में हो, प्रत्येक की श्रद्धा समान है।

छहढाला में भी कहा है कि-

'चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजैं हैं।' (तीसरी ढाल)

अर्थात् चारित्रमोह के आधीन हो जाने से आसक्ति नहीं छूटती, फिर भी समकिती का इन्द्र भी आदर करते हैं। समकिती को आसक्ति से विरक्ति तो हुई है, इससे तो समकिती हुआ है परन्तु आसक्ति नहीं छूटती।

अहा ! अनादि से भ्रमणा में भूले जीव को सीधे रास्ते आना कठिन पड़ता है। बाहर की प्रवृत्ति करना, दुकान छोड़कर, धर्मस्थान में आकर बैठना यह कुछ धर्म की क्रिया की ऐसा लगता है; परन्तु भाई ! तू दुकान से तो भिन्न ही है। शुभ-अशुभराग की क्रिया से निवृत्त होना, वह निवृत्ति है और शुद्धोपयोग प्रकट करना, वह तेरी धर्म की प्रवृत्ति है।

'रोके आवत कर्म को सो है संवर तत्त'- शुभ-अशुभराग की क्रिया से रहित होना और निर्मलदशा प्रकट करना, उसे यहाँ संवरतत्त्व कहते हैं।

संवर आस्त्रव को रोक देता है। अर्थात् कर्म आते थे और उन्हें रोक

दिया- ऐसा नहीं। स्वभाव का आश्रय लेने से पुण्य-पाप उत्पन्न नहीं होते, इसकारण कर्म नहीं आते, उसे 'रोका' ऐसा कहा जाता है। कोई कर्म के रजकण आते थे और उन्हें रोक दिया- ऐसा अर्थ नहीं है। स्वयं पहले शुभाशुभभाव में रुकता था तो कर्म आते थे और अब उनसे निवृत्त होकर शुद्धोपयोग में रुका- इसकारण कर्म स्वयं ही नहीं आते।

एक-एक तत्त्व का अर्थ समझने में भी बड़ा अन्तर है, अपनी कल्पना से अर्थ करे और माने कि मैं यथार्थ अर्थ करता हूँ। भाई! शास्त्र को समझने की आँखें कोई दूसरी ही होती हैं।

'रोके आवत कर्म को'- अर्थात् आते कर्म को रोका नहीं, परन्तु कर्मागमन का कारण जो राग, वह नहीं हुआ और शुद्धोपयोग हुआ- इसकारण कर्म आने ही नहीं थे, वे नहीं आये; उन्हें व्यवहार से 'रोका' ऐसा कहा जाता है।

संवर किसे कहते हैं अर्थात् धर्म किसे कहते हैं? धर्म कैसे उत्पन्न होता है? उसका वर्णन चल रहा है।

शुभ और अशुभ विकाररूप भाव हैं, उन्हें रोककर अथवा उनसे विरक्त होकर जो जानने-देखने रूप शुद्धोपयोग को धारण करता है, वह संवर है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजादि के भाव होते हैं; वह शुभयोग है और हिंसा, झूठ, चोरी, क्रोध, मान आदि के भाव होते हैं, वह अशुभयोग है, उनसे विरक्त होकर ज्ञाता-दृष्टा भाव को धरे वह संवर है। अर्थात् शुभ-अशुभ भाव से रहित शुद्धभाव को धारण करना-उसका नाम संवर अथवा धर्म है।

अज्ञानी जिसको आत्मा कहते हैं, वह नहीं; परन्तु सर्वज्ञ वीतराग द्वारा देखा और कहा गया जो आत्मा; वह शरीर, वाणी और कर्म से तो भिन्न है ही; परन्तु दया, दान, व्रतादि शुभभाव और हिंसा, झूठ, चोरी, वासना, क्रोध, मानादि के अशुभभावों से भी चैतन्यतत्त्व भिन्न है। ऐसे चैतन्यप्रभु का माहात्म्य करके जो शुद्ध त्रिकाली भाव में एकाकार हो, उसे राग के मलरहित जो शुद्धोपयोग होता है, वह संवरतत्त्व है। अपने चैतन्य स्वभाव की दृष्टि

करके, पुण्य-पाप के विकल्प रहित जो शुद्धपरिणाम प्रकट होते हैं, उन्हें परमात्मा संवरतत्त्व कहते हैं।

देखो! मार्ग ही ऐसा है। दुनिया नहीं माने, इससे कोई मार्ग नहीं बदल जाता। दुनिया को तो अभी खबर ही नहीं कि धर्म क्या चीज है और वह कैसे प्रकट होता है।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन है, चैतन्यप्रकाश स्वरूप पवित्र मूर्ति है, उसकी सन्मुखता करके, राग से विमुख होकर अपने शुद्धभाव को धारण करे; उसको सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और संवर कहते हैं। संवर से ही धर्म का प्रारम्भ होता है।

'जो उपयोगस्वरूप धरि वरतै जोग विरत'- इसमें अस्ति-नास्ति से संवर का स्वरूप बताया है। ज्ञानानन्दस्वभाव का शुद्ध व्यापार किया, वह अस्ति और शुभ-अशुभ विकल्प से विरत हुआ, वह नास्ति।

'रोके आवत कर्म को'- अर्थात् कर्म आते थे, उन्हें रोक दिया- ऐसा नहीं; परन्तु शुद्धभाव होने से कर्म आये ही नहीं। पहले शुभ-अशुभभाव थे, उनके निमित्त से कर्म आते थे, अब शुभाशुभभाव से विरक्त होकर शुद्धभाव में आया, इसकारण कर्म आना ही नहीं थे, वे नहीं आये, उसे यहाँ कर्म को रोका- ऐसा कहा है। कर्म के एक भी रजकण को लाना या रोकना जीव के अधिकार में नहीं है; क्योंकि कर्म तो जड़ है और आत्मा चैतन्य है। आता है न! कि 'दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम' इसका अर्थ क्या ?जो रजकण का पिण्ड जिसके पास आना है वह उसके पास आयेगा... आयेगा और आयेगा ही और जो परमाणु नहीं आने हैं, वे नहीं ही आयेंगे, उसमें आत्मा का कुछ भी अधिकार नहीं है। आहार लूँ या नहीं लूँ ऐसा विकल्प होता है; परन्तु आहार आना या नहीं आना वह जड़ की क्रिया है। अज्ञानी उसका स्वामी होने जाता है, अत: वह मिथ्यादृष्टि है।

शरीर सदा अजीव है, वह जीव के साथ रहा है; परन्तु कोई जीव होकर नहीं रहा, शरीर तो अजीवरूप से ही रहा है। तथापि अज्ञानी मूढ उसको निज

मानता है वह तो उठाईगीर (चोर) कहलाता है कि जो परवस्तु को निज मान लेता है।

सिद्धान्त नक्की करो कि शरीर अजीवरूप से ही रहा है। यदि शरीर जीवरूप हो तो वह अरूपी होना चाहिए; परन्तु शरीर तो रूपी है, जड़ है; वाणी भी जड़ है और पैसा भी जड़-धूल है, वह तुम्हारा होकर नहीं रहता, धूल तो धूल ही है।

यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि आस्रवतत्त्व भी जीव नहीं है। शुभाशुभ परिणाम आस्रवतत्त्व है, मेल है, जो उन्हें अपना मानता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है, अजैन है। लोगों ने, सत्य क्या है?तत्त्व क्या है?यह ज्ञान में लिया ही नहीं है, अनादि से विपरीत मान रखा है।

अन्तर की अपूर्व वस्तु क्या है, वह भी लोगों को सुनने को नहीं मिली। मात्र बाहर से व्रत लेकर, तप करके, यात्रा करके मान लेते हैं कि धर्म हो गया; परन्तु वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा तो कहते हैं कि शुभाशुभ परिणाम का रुकना, उनसे विरक्त होना और आनन्दकन्द प्रभु में लीन होना ही संवर और धर्म है।

चैतन्यस्वरूप तो अनादि-अनन्त वीतराग स्वरूप से ही है, उसकी दृष्टि करने से वीतरागभाव का वेदन हो और नये कर्म आना रुके, वह तो संवर की भूमिका हुई; परन्तु अब जो पुराने कर्म शेष हैं, उनका क्या करना, उसके लिए निर्जरा के स्वरूप का वर्णन करते हैं। जिसको संवर नहीं है, उसको तो निर्जरा होती ही नहीं है। संवरपूर्वक ही निर्जरा होती है। वही वास्तविक निर्जरा है।

पुण्य से धर्म होता है ऐसी जिसकी दृष्टि है, वह तो छह-छह माह के उपवास करे या करोड़ों का दान दे, परन्तु उसको धर्म नहीं होता और निर्जरा भी नहीं होती। पूर्व में कहा है कि शुद्धतत्त्व की पहचान और उसके सन्मुख दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रकट हो अर्थात् नये कर्म नहीं आते, परन्तु जो पुराने कर्म सत्ता में पड़े हैं, उनका नाश किसप्रकार करना, उसकी अब बात करते हैं। क्रमशः

ज्ञान की अनुभूति, वह मोक्ष का मार्ग

जिसको दु:ख से छूटकर आत्मा के परम आनंद की प्राप्ति का प्रयोजन है, वह जीव आत्मा का अर्थी होकर नि:शंकरूप से अनुभव द्वारा उसकी सेवा करता है। मोक्षार्थी को पहले शुभरागादि अन्य कुछ करने को नहीं कहा, परंतु पहले ही आत्मा को जानकर-पहिचानकर उसका अनुभव करना कहा है। पहले शास्त्रादि से सामान्य जानकारी हो, उसकी बात नहीं है किंतु स्वानुभवपूर्वक जानना, वही सच्चा ज्ञातृत्व है।

प्रत्येक जीव ज्ञातास्वरूप ही है; परंतु 'यह जो जाननेरूप चेतनभाव है, वही मैं हूँ'—इसप्रकार अनुभूतिस्वरूप से स्वयं अपने को जाने, तब आत्मा जाना कहा जाता है और तब ज्ञानी की सेवा की कही जाती है। ज्ञान की ऐसी सेवा ही ज्ञानी की सच्ची सेवा है।

आत्मा को 'राजा' कहा; राजा अर्थात् श्रेष्ठ। ज्ञातास्वभावी आत्मा ही सर्वश्रेष्ठ है, उच्च है, ऊर्ध्व है। ज्ञान की ऊर्ध्वता है; वह रागादि को जानने से उनमें एकमेक कहीं हो जाता परंतु उनसे पृथक् रहता है—ऐसी उसकी ऊर्ध्वता है। परंतु 'यह रागादिभाव मैं हूँ'—ऐसा अज्ञानी अनुभव करता है, इसलिये राग से भिन्न ज्ञान का वह सेवन नहीं करता। धर्मी तो राग को जानते हुए भी 'यह जो चेतनभावरूप से अनुभव में आता है, वही मैं हूँ, रागादि मैं नहीं हूँ'—इसप्रकार भेदज्ञान द्वारा ज्ञान का ही सेवन करते हैं। ऐसी सेवा, यह मोक्ष को साधने का उपाय है।

जो रागादि अन्य भाव हैं, वे कहीं चेतनरूप से अनुभव में नहीं आते। द्रव्य-गुण के स्वभाव में तो रागादि नहीं हैं और पर्याय में चेतनभावरूप से आत्मा परिणमित होता है, उस चेतनभाव में रागादि नहीं है—इसप्रकार पर्याय में भी चेतन और राग की भिन्नता है। जो ज्ञानरूप से ज्ञात होता है, ज्ञानरूप से ही स्वाद में आता है, उसका संबंध मेरे स्वभाव के साथ है; ज्ञान में जो रागरूप से ज्ञात होता है, उसका संबंध मेरे स्वभाव के साथ नहीं है।

इसप्रकार ज्ञान और राग को भिन्न-भिन्न अनुभव में लेने से ज्ञानी को आत्मज्ञान उदित होता है; उस ज्ञान के साथ ही उसकी नि:शंक प्रतीति वर्तती है और ज्ञान-श्रद्धापूर्वक उसी में स्थिर होने से परम आनंद का अनुभव होता है।—इसप्रकार साध्य की सिद्धि होती है।

जड़ और चेतन, ज्ञान और राग, आकुलता और शांति—ऐसे अनेक भाव हैं; उनमें 'मैं तो ज्ञान हूँ, ज्ञान और शांतिमय जो चेतनभाव है, वही मैं हूँ; चेतनपने में विस्तरित भाव, वह आत्मा है, उतना ही मैं हूँ और चेतनता से बाह्य ऐसे रागादि अन्यभाव, वह सच्चा आत्मा नहीं है, वह मेरा स्वरूप नहीं है;'—इसप्रकार धर्मी अपने को ज्ञान को अनुभूतिरूप जानता है। ऐसी अनुभूति में कहीं अकेला ज्ञान नहीं हे, आत्मा के अनंतगुणों की निर्मलता का उसमें वेदन है। ऐसे वेदनपूर्वक आत्मा को जाना, वह सच्चा ज्ञान है और उसी को सच्चे आत्मा की श्रद्धा होती है। जिसे जाने उसकी श्रद्धा कर सकता है; वस्तु को जाने बिना श्रद्धा किसकी? जाने हुए का ही श्रद्धान होता है—ऐसा कहने से कहीं श्रद्धा का मूल्य कम नहीं हो जाता। आत्मवस्तु परभाव से भिन्न, कैसी और कितनी महान है, वह जब ज्ञान में आती है, उसी समय ज्ञानी को उसकी श्रद्धा होती है कि 'यह वस्तु मैं हूँ' और उसी समय निर्विकल्प अनुभूति भी होती है। इसप्रकार आत्मा का सच्चा ज्ञान, सम्यग्दर्शन और अनुभव एकसाथ ही होते हैं। ऐसे अनुभवज्ञान को ही यहाँ ज्ञान कहा है। ऐसा ज्ञान पहले कभी एक क्षण भी जीव ने नहीं किया। ऐसे ज्ञान के बिना कोई कहे कि हमें आत्मा की श्रद्धा हो गई है—तो उसकी श्रद्धा तो गधे के सींगों की श्रद्धा जैसी मिथ्या है। आत्मा कैसा है, वह जाना ही नहीं तो तूने श्रद्धा किसकी की? आत्मा का अचिंत्य गंभीर स्वभाव जैसा है, वैसा जानने में आये, उसी क्षण परिणाम रागादि से भिन्न होकर चैतन्य-स्वभावोन्मुख हुए बिना नहीं रहते। ऐसे भेदज्ञान सहित ज्ञान-दर्शन-चारित्र प्रगट होते हैं और शुद्ध आत्मा की सिद्धि होती है। इसके अतिरिक्त अन्य

प्रकार से आत्मा की साधना नहीं होती और धर्म नहीं होता।

अहा, ज्ञान का अस्तित्व कैसा है, उसकी जीवों को खबर नहीं है। ज्ञानस्वरूप से ही अपना अस्तित्व है, उसके बदले विकल्प में अपना अस्तित्व मानकर रुक गये हैं, इसलिये भिन्न ज्ञान का अत्यंत मधुर चैतन्यस्वाद उन्हें नहीं आता, इसलिये आत्मा के सच्चे स्वरूप का अनुभव नहीं होता, रागादि अशुद्धभावरूप ही वे अपना अनुभव करते हैं।—ऐसे जीवों को साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं होती। रागादि समस्त विभावों से भिन्न, चेतनस्वभावरूप जो अनुभव में आता है, वही मैं हूँ—ऐसे भिन्न आत्मा के अनुभव में तो आत्मा के अनंत गुणों का स्वाद समा जाता है। ऐसे स्वरूप से जहाँ आत्मा को पहिचाना, वहाँ जीव स्वयं अपने स्वरूप में निःशंक स्थिर होने में समर्थ हुआ। इसप्रकार भेदज्ञान द्वारा उसे साध्य आत्मा की सिद्धि होती है।

ज्ञान के अनुभव से रहित पर की चाहे जितनी जानकारी हो, उसे ज्ञान कहते ही नहीं, उसमें ज्ञान का सेवन नहीं है, उसमें तो रागादि परभाव का सेवन है। भाई, तूने शास्त्र भले पढ़े; परंतु शास्त्रों में कहा हुआ जो राग से भिन्न ज्ञान, उस ज्ञान का सेवन तूने कभी नहीं किया और तब तक तेरी श्रद्धा या आचरण भी सच्चा नहीं होता। आत्मा के ज्ञान का सेवन तो राग से पार है और शास्त्रों के परलक्षी ज्ञातृत्व से भी पार है; वह तो अंतर की अतीन्द्रिय वस्तु है। आत्मा को जानता हो तो अतीन्द्रिय-प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा ही वह ज्ञात होता है। अतीन्द्रिय ज्ञानसहित श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है और तत्पश्चात् चारित्रदशा होती है। जिसे चारित्रदशा हुई, वह तो भगवान हो गया। चारित्र की महिमा की जगत को खबर नहीं हैं; चारित्र से पूर्व आत्मा के ज्ञान-श्रद्धान कैसे होते हैं, उसकी भी जगत को खबर नहीं है। यह तो आत्मसाधना का अलौकिक अंतरंगमार्ग है, जिसके फल में सादि-अनंत काल तक अनंत सुख का अनुभव है।●

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यवर
श्री अमितगति (प्रथम)

भगवान महावीर की आम्नाय में एक ही नाम के दो अमितगति आचार्य हुए हैं, इतना ही नहीं, दोनों का समय भी अत्यन्त नजदीक है अर्थात् दोनों के बीच दो पीढ़ी का ही फ़र्क है। अत: भ्रम होने का सम्भव रहता है, कि मानों दोनों एक ही अमितगति न हो। अत: इतिहासकारों को दोनों का भेद निर्णित करना जरूरी रहा।

आचार्य अमितगति (प्रथम), आचार्य देवसेन के शिष्य थे। आचार्य अमितगति (प्रथम) के शिष्य नेमिषेण व उनके शिष्य माधवसेन व उनके शिष्य आचार्य अमितगति (द्वितीय) थे।

अमितगति आचार्य (प्रथम) के, एक विशेष प्रकार का विशेषण लगाया जाता है 'त्यक्तनि:शेषसंग'—यह विशेषण आचार्य अमितगति (द्वितीय) ने स्वयं ही आचार्य अमितगति (प्रथम) के लिए दिया है, जो स्वयं आचार्य अमितगति (प्रथम) भी यह विशेषण अपने साथ लगाते थे। इस भाँति आचार्य अमितगति (द्वितीय) ने अपने को सम्माननीय आचार्य अमितगति (प्रथम) से भिन्न बताया है।

आपकी सर्वोत्तम कृति 'योगसार-प्राभृत' है, कि जो अध्यात्म-रस प्रचुर है। इस ग्रन्थ में आपने स्वयं के लिए 'निसंगात्मा' यह विशेषण लगाया होने से, उपरोक्त विशेषण सा ही यह विशेषण होने से स्पष्ट होता है, कि योगसार-प्राभृत आपका ही ग्रन्थ है।

आपको अपने गुरु आचार्य देवसेन की असीम महिमा थी, वह आपके 'सुभाषितरत्नसंदोह' के एक श्लोक से सिद्ध होती है।

आपके बारे में इससे विशेष कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं होती।

आपके जीवन की मुख्य रचना 'योगसार-प्राभृत' ही है। आपका काल 923-963 के अन्तर्गत होना निश्चित होता है।

'सुभाषितरत्नसंदोह' के रचयिता आचार्य अमितगतिदेव (प्रथम) को कोटि कोटि वन्दन।

प्रेरक-प्रसंग

प्रतिभाशाली बालक

बालक ईश्वरचन्द्र अपने पिता ठाकुरदास के साथ वीरसिंह नामक गाँव से कलकत्ता जा रहा था। गाँव से कलकत्ता तक पक्की सड़क थी। जब काफी दूर निकल गये तो बालक का ध्यान जमीन में गड़े पत्थर की ओर गया। उस पर काला-काला कुछ लिखा था। बालक ने उसे देखकर पूछा—'पिताजी! स्थान-स्थान पर ये पत्थर जमीन में क्यों गाड़े गए हैं?'

पिता ने समझाया—'बेटा! ये मील के पत्थर हैं। इनसे किसी स्थान की दूरी ज्ञात होती है। इस पत्थर पर अंग्रेजी में लिखा है कि कलकत्ता यहाँ से उन्नीस मील दूर है।'

लगभग दस मील की यात्रा बातचीत में निकल गयी। मील का पत्थर आता और बालक पूछ लेता 'पिताजी! यह क्या लिखा है?' इस प्रकार अंग्रेजी के अंकों की बनावट उसके मस्तिष्क में जमती जा रही थी और यात्रा के पूर्ण होने तक उसे अंग्रेजी की गिनती का पूरा अभ्यास हो गया।

शाम तक पिता-पुत्र कलकत्ता पहुँच गये और दुर्लभ सिंह के यहाँ ठहरे। सुबह वे दोनों सेठ की दुकान पर गये। वहाँ से ठाकुरदास को कुछ हिसाब मिलाने के लिए दिया। वह बालक भी पास में बैठकर सारे हिसाब को देखता रहा। जब हिसाब करके पिता ने सेठ को वापस कर दिया तो ईश्वरचन्द्र ने कहा—'पिताजी! हिसाब मुझको भी आता है।' बालक की बात सेठ ने सुनी तो पूछ बैठा ठाकुरदास से—'क्या आपके बेटे ने कहीं अंग्रेजी की शिक्षा भी ली है।'

'नहीं! नहीं! एकाग्रचित्त होकर जब यह किसी कार्य को देखता है और समझने का प्रयास करता है तो उसे सीखने में देर नहीं लगती।' इस प्रतिभा का कारण पूछने पर बालक ने यही कहा—'**किसी बात का पूरा ध्यान देने से वह कठिन होते हुए भी किसी के लिए भी सरल हो सकती है।**' बाद में यही बालक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

साभार : बोध कथायें

समाचार-दर्शन

राष्ट्रीय जैनदर्शन विद्वत् संगोष्ठी सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम चिदायतन (हस्तिनापुर) : श्री दिव्यदेशना ट्रस्ट दिल्ली; अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन उस्मानपुर; उत्तरप्रदेश जैन विद्या शोधसंस्थान एवं श्री शान्तिनाथ-अकम्पन-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट हस्तिनापुर के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 13 से 16फरवरी 2020 तक विद्वत् संगोष्ठी अनेक मांगलिक आयोजनपूर्वक सानन्द सम्पन्न हुई।

गोष्ठी का प्रथम दिन जिनेन्द्रदेव की मंगलमय पूजन के साथ प्रारम्भ किया गया। तत्पश्चात् प्रवचनों की शृंखला में सी.डी प्रवचन के रूप में आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन हुआ एवं इसी क्रम में डॉ. योगेश जैन, अलीगंज; बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाश जैन के प्रवचनों का लाभ श्रोताओं को प्राप्त हुआ।

दोपहर के सत्र में सर्व प्रथम गोष्ठी के मंगलमय प्रारम्भ हेतु शोभायात्रा एवं उद्घाटन सभा का आयोजन किया गया। उद्घाटन सभा की अध्यक्षता प्रो. अभयकुमार जैन, उपाध्यक्ष, उत्तरप्रदेश जैन शोध विद्या शोध संस्थान संस्कृति विभाग ने की। इसी के साथ मंच पर श्री सुरेश जैन ऋतुराज, श्री अजितप्रसाद जैन दिल्ली; डॉ. राकेश सिंह; डॉ. योगेश जैन, अलीगंज; श्री स्वप्निल जैन, पण्डित अशोक लुहाड़िया, तीर्थधाम मंगलायतन की गरिमामय उपस्थिति रही। सभा का संचालन डॉ. राकेश शास्त्री, नागपुर (गोष्ठी के निदेशक); पण्डित ऋषभ शास्त्री, उस्मानपुर (गोष्ठी के संयोजक) ने किया। तदुपरान्त पण्डित संजय जैन, जेवर का आत्मानुभूति विषय पर मार्मिक प्रवचन हुआ।

सायंकालीन सभा में जिनेन्द्र भक्ति का आयोजन किया गया। पण्डित अभयकुमार जैन, देवलाली का प्रवचन सुनने को मिला। बह्मचर्य की विशेष प्रेरणा देते हुए ब्रह्मचारी हेमचन्दजी 'हेम' की अध्यक्षता; ब्रह्मचारी सुमतप्रकाश जैन; बालब्रह्मचारिणी सुजाताताई रोटे की विशेषज्ञता में 'ब्रह्मानन्द निर्झर' विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसका संचालन पण्डित चर्चित शास्त्री ने किया। इस विषय में ब्रह्मचारी रविभैया; ब्रह्मचारी अमितभैया; पण्डित संयम शास्त्री; डॉ. दीपक शास्त्री; ब्रह्मचारी निखिलभैया आदि वक्ताओं ने अपना विषय प्रस्तुत किया। इस प्रकार चार दिवसीय विद्वत् संगोष्ठी का पहला दिन सानन्द सम्पन्न हुआ।

द्वितीय दिन : द्वितीय सत्र (श्रावकाचार)

अध्यक्षता हेमचन्दजी हेम; संचालन पण्डित अमन जैन दिल्ली। वक्ताओं के रूप

में बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाश जैन; डॉ. वीरसागर जैन, दिल्ली; डॉ. दीपक शास्त्री, जयपुर; पण्डित ऋषभ जैन, उस्मानपुर; डॉ. विवेक सागर; पण्डित संयम नागपुर आदि सभी वक्ताओं ने श्रावकाचार विषय पर अपना मनोगत व्यक्त किया।

तृतीय सत्र (श्रमणाचार)

अध्ययक्षता डॉ. वीरसागर जैन, दिल्ली; संचालन पण्डित ऋषभ जैन, उस्मानपुर। वक्ताओं के रूप में डॉ. योगेश जैन, अलीगंज; डॉ. स्वर्णलता जैन, नागपुर; डॉ. मनीष जैन, खतौली; पण्डित संजय जैन, दौसा; पण्डित अनिल जैन, जयपुर; पण्डित शुभम जैन, भोपाल; विदुषी प्रज्ञा देवलाली आदि ने अपने विषयों का निरूपण करते हुए अपना मनोगत व्यक्त किया।

तृतीय दिन : चतुर्थ सत्र (पंच समवाय)

अध्यक्षता डॉ. शान्तिकुमार पाटील; संचालन पण्डित ऋषभ जैन, उस्मानपुर। विषय विशेषज्ञ डॉ. मनीष शास्त्री, मेरठ; वक्ताओं में पण्डित अभयकुमारजी, देवलाली; डॉ. प्रमोद जैन, जयपुर; पण्डित सुनील जैनापुरे, राजकोट; पण्डित अरविन्द जैन, करहल; पण्डित सोनू जैन, अहमदाबाद; पण्डित जिनेश जैन, मुम्बई; पण्डित चर्चित जैन, खनियांधाना आदि ने अपने विषयों का निरूपण करते हुए अपना मनोगत व्यक्त किया।

पंचम सत्र (कर्म मीमांसा)

अध्यक्षता श्री रमेशचन्द्र भण्डारी; संचालन पण्डित जिनेश मुम्बई। विषय विशेषज्ञ डॉ. संजीव गोधा, जयपुर; वक्ताओं के रूप में डॉ. अशोक गोयल, दिल्ली; पण्डित विपिन जैन, नागपुर; पण्डित जगदीशजी; पण्डित अच्युतकान्त जयपुर; पण्डित मंथन गाला, मुम्बई; पण्डित अमन दिल्ली आदि ने अपने विषयों का निरूपण करते हुए अपना मनोगत व्यक्त किया।

इसी अवसर पर श्री अजित जैन, बड़ोदरा; श्री प्रेमचन्द बजाज, कोटा; श्री विलासभाई, शिकागो; श्री सुरेश पाटनी, कोलकाता; पण्डित अरुण मोदी, सागर; श्री वज्रसेन जैन, दिल्ली; श्री नरेश लुहाड़िया, दिल्ली; श्री मंगलसेनजी, दिल्ली आदि महानुभाव उपस्थित थे।

संगोष्ठी में उपस्थित भाई-बहिनों की अनेक शंकाओं का समाधान ऊहापोहपूर्वक उपस्थित विद्वानों द्वारा किया गया। दिल्ली, मेरठ, जयपुर, कोटा, नागपुर, मुम्बई, सागर, ललितपुर, आदि अनेक स्थानों से पधारे हुए हजारों साधर्मियों ने निर्माणाधीन तीर्थधाम चिदायतन की धरा पर संगोष्ठी का लाभ लिया।

वैराग्यसमाचार

मुम्बई : सम्माननीय मनीषी एवं समर्पित समाजसेवी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समर्पित शिष्य, आदरणीय श्री कान्तिभाई मोटाणी मुम्बई का शान्तपरिणामों से इस नश्वर नरदेह का परिवर्तन कर लिया। आपको तीर्थधाम मंगलायतन के प्रति बहुत स्नेह था, इसके पंच कल्याणक के अलावा अनेकों बार यहाँ पर पधारे हैं। श्री कान्तिभाई मोटाणीजी मुमुक्षु समाज के एक बहुत बड़े स्तम्भ के रूप जाने जाते रहे हैं। देशभर में संचालित संस्थानों में और देश भर में संचालित तत्त्व प्रचार-प्रसार की गतिविधियों में आपका सदैव योगदान रहा हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली के आप ट्रस्टी / अध्यक्ष रहते हुए कहान नगर की स्थापना से लेकर आजतक अपना सक्रिय योगदान देते रहे। आप गुरुप्रसाद पत्रिका के सम्पादक रहे हैं। आपने अपने सम्पादन में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों के अतिरिक्त भी अनेक हिन्दी रचनाओं का अनुवाद करके भी प्रकाशित किया है।

किशनगंज : पण्डित कैलाशचन्द जैन, ठाकुरगंजवालों का शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया। आपने तीर्थधाम मंगलायतन में रहकर तत्त्वाभ्यास किया। हमेशा शास्त्र पठन की प्रेरणा देते थे।

सोनगढ़ : ब्रह्मचारिणी पुष्पाबेन का शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया। आप सुशीलाबेन, कंचनबेन सोनगढ़ की छोटी बहिन थीं। आपने पूज्य गुरुदेवश्री के समक्ष ब्रह्मचर्य नियम लेकर आजीवन तत्त्वचर्चा-स्वाध्याय में अपना उपयोग लगाया।

सूरत : डॉ. धनकुमारजी सूरतवालों का शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया। आपका मंगलायतन के प्रति विशेष स्नेह रहा।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन की वेबसाईट का नवीनीकरण.....

तीर्थधाम मङ्गलायतन की वेबसाईट (www.mangalayatan.com) पर प्राचीन आचार्यों एवं पण्डित, विद्वानों द्वारा रचित हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ और वर्तमान में मङ्गलायतन द्वारा प्रकाशित सत्साहित्य उपलब्ध है। जो भी साधर्मी लाभ लेना चाहे। वह इनको डाउनलोड कर उपयोग में ले सकते हैं।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर स्वाध्याय की अद्भुत शृंखला तैयार की जा रही है। आप सभी YouTube पर Teerthdham Mangalayatan, Aligarh Channel को Subscribe कर इन स्वाध्याय का लाभ ले सकते हैं तथा मङ्गलायतन में आयोजित भक्ति, अन्य विद्वानों के स्वाध्याय का भी लाभ ले सकते हैं।

Link -
https://www.youtube.com/channel/UCwxazHz6NGTe6TQCMx8C5sQ

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना-प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** सत्रह वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे-भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम - **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आपको प्रतिमाह, मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं।

मङ्गलायतन का प्रतिमाह का खर्च, लगभग दस लाख रुपये है। इस योजना के माध्यम से आप हमें प्रतिमाह 1,000 (प्रतिवर्ष 1000X12=12,000) रुपये दानस्वरूप देंगे। भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व-पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें - ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

सम्पर्क-सूत्र : 9756633800 (सुधीर शास्त्री)
email - info@mangalayatan.com

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की आजीवन सदस्यता स्वीकार करता हूँ, मैं प्रतिमाह एक हजार रुपये **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आजीवन जमा करवाता रहूँगा।

हस्ताक्षर

यह राशि आप प्रतिमाह दिनांक पहली से दस तक निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	:	SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	HDFC BANK
BRANCH	:	RAMGHAT ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	:	50100263980712
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	HDFC0000380
PAN NO.	:	AABTA0995P

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

नवीन प्रकाशन - मोक्षमार्गप्रकाशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रथम बार **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुनः मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।** जो मुमुक्षु संस्था, समाज स्वाध्याय हेतु मंगाना चाहते हैं। वे डाकखर्च देकर, नि:शुल्क मंगा सकते हैं।

छहढाला (हिन्दी) नवीन संस्करण **सशुल्क**

ग्रन्थ मँगाने का पता— प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन,
अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

तीर्थधाम मङ्गलायतन

अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर सत्साहित्य मँगायें

नि:शुल्क मँगायें (मात्र डाकखर्च देकर)

मंगल समर्पण
मोक्षमार्गप्रकाशक (नवीन संशोधित)
जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला (छह भाग)
(पण्डित कैलाशचन्द्रजी जैन द्वारा संकलित)

50 प्रतिशत छूट के साथ मँगायें

छहढाला (रंगीन सचित्र, अंग्रेजी)

25 प्रतिशत छूट के साथ मँगायें

स्वतन्त्रता की घोषणा
स्वाधीनता का शंखनाद
भक्तामर रहस्य
पंचास्तिकाय संग्रह
छहढाला (रंगीन सचित्र, हिन्दी)
पंच कल्याणक प्रवचन
आध्यात्मिक पाठ संग्रह
वैराग्य उपावन माही...
दशधर्म प्रवचन
वह घड़ी कब आयेगी ?

साहित्य मँगाने का पता -

तीर्थधाम मङ्गलायतन

अलीगढ़-आगरा रोड, सासनी-204216 (हाथरस)(उ.प्र.)
मोबा : 9997996346, 9756633800

प्रकाशन तिथि - 14 मार्च 2020 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 मार्च 2020
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञान की तलहटी

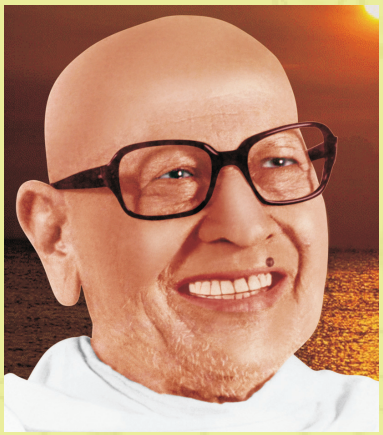

अहो! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञान की तलहटी! आनन्दानुभव के झूले में झूलते हुए हजारों बिच्छुओं के काटने पर या पचास कोस दूर भीषण वज्रपात की घोर ध्वनि होने पर भी जिसे खबर नहीं पड़ती और आनन्द की गहराई में उतरकर क्षण में केवलज्ञान प्राप्त कर ले, **उस अद्भुत मुनिदशा की क्या बात! धन्य है वह दशा!**

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com